ध्यान दें:

4

# सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद

प्रत्येक दर्शन के कुछ विशेष विषय होते हैं जो उन दर्शनों की उत्कृष्टता का वर्णन करते है। उन दर्शनों के प्रधान वाद से वे प्रसिद्ध हो जाते हैं। जैसे न्याय वैशेषिक दर्शन में अनुमान प्रमाण, अद्वैत वेदान्त दर्शन में विवर्तवाद, वैसे ही सांख्यदर्शन में भी यह सत्कार्यवाद प्रसिद्ध है। वस्तुतः कार्य कारण सम्बन्ध तथा अनुसन्धान परम्परा प्रत्येक दर्शन में देखी जाती है। इसलिए प्रत्येक दर्शन के अन्तर्गत हेतुमद्भाव तत्व की व्याख्या की गई है। इसकी व्याख्या के वैचित्रय में प्रत्यके दर्शन का स्वातन्त्र्य रहा है। सत्कार्यवादि सांख्यों का कार्यकारण के विषय में अन्तिम निर्णय रहा है। सांख्य कारिका ग्रन्थ में प्रारम्भ में सांख्य सम्मत प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम इन तीनों प्रमाणों का विचार करके, सूक्ष्म होने के कारण प्रधानादि तत्वों की प्रत्यक्ष कारण से उपलब्धि न होती है, ऐसा कहकर के प्रधान की सिद्धि के लिए सत्कार्यवाद का युक्ति पूर्वक कारिकाकार प्रतिपादन करते हैं। कार्य उत्पत्ति के पहले सत् था अथवा असत् था यह मुख्य विचार किया जाता है। शून्यवादी बौद्धों के मत में असत् कारण से सत् कार्य उत्पन्न होता है। नैयायिक असत्कार्यवाद को अङ्गीकृत नहीं करते हैं उनके मत में सत् ही असत् हो जाता है। अद्वैतवादी तो विवर्तवाद को ही अङ्गीकार करते हैं। इस पाठ में सांख्य सम्मत सत्कार्यवाद का विस्तार से उपस्थापन होगा। तथा सम्पूर्ण सत्कार्यवाद से सम्बन्ध बहुत विषयों का आलोचन किया जायेगा।

## उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप सक्षम होंगे;

- सांख्य दर्शन के प्रसिद्ध सत्कार्यवाद का विस्तार से परिचय प्राप्त करने में;
- सत्कार्यवाद की सिद्धि के लिए सांख्याचार्यों ने जो युक्तियाँ उपस्थापित की उनका ज्ञान प्राप्त करने में;
- सत्कार्यवाद के सम्बन्ध में शून्यवाद का ज्ञान प्राप्त करने में;
- सत्कार्यवाद के सम्बन्ध में असत्कार्यवाद के विषय का ज्ञान प्राप्त करने में;
- सत्कार्यवाद के सम्बन्ध में विवर्तवाद के विषय का बोध प्राप्त करने में;
- सांख्यों द्वारा शून्यवाद के खण्डन के विषय का ज्ञान प्राप्त करने में;
- सांख्यों के विवर्तवाद के खण्डन के विषय का ज्ञान प्राप्त करने में;

पाठ-4

# सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद

ध्यान दें:

## 4.1 ) असत्कार्यवाद

असत्कार्यवाद नैयायिकों का मत है। उनके मत में सत् से असत् उत्पन्न होता है, अर्थात् सत् कारण से असत् ही उत्पन्न होता है। जैसे सत् भावरूप से परमाणु के असत् पूर्व अविद्यमान द्वयणु आदि उत्पन्न होते है, पूर्व में असद् से हि घटादि कार्य दण्ड चक्र वस्त्र आदि सामग्री समवहितमृदादि कारण से भिन्न सत् से उत्पन्न होती है। यहाँ पर यह भाव है कि स्वयं कि उत्पत्ति के पूर्व वह कार्य नहीं था तथा बाद में कारणसामग्री के कारण उत्पन्न होता है। इसमें कार्य तथा कारण का अन्यत्व तथा परमार्थ तथा सत्यत्व को बताया गया है। इस प्रकार नैयायिकों के मत में घड़े की उत्पत्ति से पूर्व घड़ा था ही नहीं। दो कपाल के संयोग होने पर नये घड़े का निर्माण कार्य आरम्भ होता है इस कारण से यह आरम्भवाद कहलाता है।

## 4.2 ) शून्यकार्यवाद

"शून्यता ही जगत् की परमार्थता है" इस प्रकार से शून्यवादी बौद्ध लोग मानते हैं। उनके मत में असत् से सत् उत्पन्न होता है। इसका अर्थ ये है कि अभाव से भाव उत्पन्न होता है। विनष्ट बीज से ही अङ्कुर उत्पन्न होता है। नष्ट दूध से दही उत्पन्न होता है, विनष्ट मिट्टि से घड़ा इस प्रकार अभाव ग्रस्त बीजों से अङ्कुरादि की उत्पत्ति देखी गई है। "सभी कार्यरूप भाव अभावकारण के द्वारा होते है जैसे बीज के नाश के बाद में अङ्कुरादि उत्पन्न होते है" इस प्रकार से अनुमान किया जाता है, तब बौद्धमत वाले गौतम का सूत्र उपस्थापित करते हैं।

"अभावाद् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्" (4.1.14) इति, जो अङ्कुरादि कार्य अव्यवहितपूर्ववृत्तित्व के कारण बीजादि भाव को प्राप्त करते हैं। न की बीजादि के अभाव की सिद्धि में कारण होते हैं और न भाव की। ''असदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्, तस्मादसतः सज्जायते" इस श्रुति के अनुसार पहले संसार की उत्पत्ति से पहले सभी का अभाव ही था। उस अभाव से ही सृष्टि के समय सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हुई, यह स्पष्ट रूप से प्रति पादित होता है। उसी प्रकार संसार में भी जो बीजों में अङ्कुरादि की उत्पत्ति देखी जाती है वहाँ पर भी बीज के नाश से ही अंकुर की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार से समझना चाहिए। सत से उत्पन्न हो, तो ऐसा नहीं हैं अपितु कारण मृत होकर कार्य को जन्म देता है जैसे बीज से अङ्कुर। कारण के मृत होने से अभाव नहीं होता है अतः निश्चित रूप से असत् सत् उत्पन्न होता है। सत् से सत् नहीं।

## 4.3 ) विवर्तवादः

सत्य का विवर्त ही यह कार्यरूपी जगत् है, इस प्रकार से अद्वैतवेदान्ति अङ्गीकृत करते हैं। इसलिए वेदान्तियों के मत में विवर्तवाद स्वीकार किया जाता है। विवर्त किसे कहते हैं? तब उत्तर देते हुए कहते हैं कि पूर्वरूप के अपरित्याग के द्वारा असत्य का पुनः प्रतिभास होना विवर्त कहलाता है। जैसे- सीपी में चादी की तथा रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है, इसलिए विवर्तवाद के विषय में कहा गया है-

**सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।**
**अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदाहृतः॥** इति।

इसका अर्थ है- जब किसी वस्तु का वस्तुगत अथवा अन्यथा रूप से विकार होता है तब वह विकार परिणाम कहलाता है। जैसे दूध दही के रूप में परिणत हो जाता है। वस्तुगत दूध का दही के रूप में परिणाम होता है। दूध अपना स्वरूप त्याग करके दही रूप में नया ग्रहण करता है। परन्तु जब किसी वस्तु का वस्तुगत अन्यथागत विकार नहीं होता है, वस्तु उसी स्वरूप में रहती है, लेकिन भ्रान्ति के कारण

ध्यान दें:

भिन्नरूप में प्रतीत होती है वह विवर्त कहलाता है। जैसै शुक्ति में रजत का भ्रमज्ञान होने पर रजत को लेने के लिए भ्रान्ति जन्य प्रवृत्ति होती है। वस्तुत: शुक्ति शुक्तिरूप में ही विराजमान रहती है, न की चांदी के रूप में। चांदी के रूप में जो कार्य की भ्रान्ति होती है वस्तुत: वह मिथ्या ही होती है। इस कारण से वास्तविक स्थिति नहीं होते हुए भी भ्रान्ति के कारण से मिथ्या रूप से कार्य करने में जो प्रतीति होती है वहा विवर्त कहलाता है। इस मत में कारण ही कार्य के स्वरूप में भासित होता है। इससे कारण ही सत्यत्व धर्म वाला होता है न की कार्य की सत्यता। एक कारण सत्ता ही विविध कार्य के आकार के द्वारा भासित होती है।

## 4.4 ) सत्कार्यवाद

भारतीय दर्शनों मे सत्कार्यवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है, अत: सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद स्वीकार किया जाता है। सत्कार्यवाद किसे कहते हैं? कार्य उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान है अथवा नहीं है इस प्रकार का प्रश्न होने पर दार्शनिकों के भिन्न-भिन्न मत प्राप्त होते है। जिसमें शून्यवादी बौद्धों के मत में कारण अभावात्मक असत् के रूप में होता है, जिससे सत् कार्य के रूप में उत्पन्न होता है। आरम्भवादी नैयायिक तथा वैशेषिक लोग कहते हैं कि उत्पत्ति से पूर्व कार्य असत् होता है अर्थात् विद्यमान रूप में नहीं रहता है, जिससे वे असत् कार्यवादी कहलाते हैं। अद्वैतवेदान्तियों के मत में कारण ही सत् के रूप में होता है उससे ही अनिर्वचनीय कार्य उत्पन्न होता है, इस प्रकार विवर्तवादी लोग मानते हैं। सांख्यों के मत में उत्पत्ति से पूर्व कार्य सत् होता है अर्थात् उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण के रूप में अथवा अव्यक्त के रूप मे विराजमान होता है अत: वे सत्कार्यवादी कहलाते हैं। इसलिए इनके मत में तिल से उत्पन्न होने वाला तेल पहले से ही अव्यक्त रूप से तिलो में स्थित रहता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए। यदि तिलों में तेल पहले से अविद्यामान होता तो वह कार्य रूप में कदापि उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार सत् के भाव रूप से प्रधानादि के सत् के कारण में विद्यामान होने से ही वह अव्यक्त रूप कार्य के रूप में उत्पन्न होता है तथा कारक व्यापार भी कहलाता है। जायते तथा उत्पद्यते इस प्रकार के शब्दों का सम्पूर्ण रूप से नूतन वस्तु की सृष्टि के रूप में तात्पर्य ग्रहण करना नहीं चाहिए अपितु अव्यक्त रूप की व्यक्त रूप में अभिव्यक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए।

### पाठगत प्रश्न 4.1

1. असत्कार्यवाद किनका कहलाता है?

   (क) बौद्धों का (ख) सांख्यों का (ग) नैयायिकों का (घ) अद्वैतवेदान्तियों का

2. सत्कार्यवाद किनका कहलाता है?

   (क) बौद्धों का (ख) सांख्यों का (ग) नैयायिकों का (घ) अद्वैतवेदान्तियों का

3. विवर्तवाद किनका कहलाता है

   (क) बौद्धों का (ख) सांख्यों का (ग) नैयायिकों का (घ) अद्वैतवेदान्तियों का

4. 'शून्यता एव जगत: परमार्थता'- यह किनका मत है?

   (क) बौद्धों का (ख) सांख्यों का (ग) नैयायिकों का (घ) अद्वैतवेदान्तियों का

5. अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा।

ध्यान दें:



(क) विकार: (ख) परिणाम: (ग) विवर्त: घ) संस्कार:।

6. विकार किसे कहते हैं?

7. विवर्त किसे कहते हैं?

8. सत्कार्यवाद के मत में कार्य कारण में किस प्रकार से रहता है?

## 4.5 ) सत्कार्यवाद को मानने में कारण

सत्कार्यवाद को मानने में सांख्यवादियों की अपनी युक्तियाँ हैं। इसलिए सांख्यकारिका में कहा गया है-

**असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।**
**शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥** इति। [9]

सांख्यकारिका में सत्कार्यवाद को अङ्गीकृत करने के लिए पाँच कारण बाताए गये हैं। वे हैं-

1. असदकरणात् 2. उपादानग्रहणात् 3. सर्वसम्भवाभावात्

4. शक्तस्य शक्यकरणात् और 5. कारणभावात्।

कारण व्यापार से बाद में उत्पन्न होने वाला कार्य सत् के रूप में ही रहता है। किस प्रकार?

1. **असदकरणात्**- असत् में करने के सामर्थ्य के अभाव से अर्थात् सत् उत्पन्न करने में समर्थ है न कि असत्। पुन: प्रश्न करते है किस प्रकार?

2. **उपादानग्रहणात्**- कारणों के साथ कार्य का सम्बन्ध होने से अर्थात् कार्य का कारण से सम्बन्ध होने से कारण कार्य का पिता होता है। सम्बन्ध होने से कार्य का असत् भाव सम्भव नहीं होता है। इसलिए यह सत् ही होता है। पुन: प्रश्न करते हैं किस प्रकार?

3. **सर्वसम्भवाभावात्** किसी की उत्पत्ति में कोई निश्चित उपादान अवश्य होता है, सभी की सभी से उत्पत्ति हो जाएं तो ऐसा नहीं है। यह कार्य तथा कारण का नियम होता है जिसमें उत्पत्ति से पूर्व कार्य का असत् पक्ष में सङ्गत नहीं होता है। अत: घड़े की उत्पत्ति के लिए मिट्टि का ही ग्रहण होता है, न कि तन्तु आदि का। यदि उत्पत्ति से पूर्व कार्य को असत् माने तो असत् कार्य के सर्वत्र होने से तन्तु आदि से भी घट का निर्माण होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता है। अत: कार्य असत् नहीं है। सत्व के पक्ष में तो घड़े का कारण मिट्टि में सत् होने से मिट्टि से घट की उत्पत्ति सम्भव होती है। यदि असम्बन्ध माने तो सभी से कार्य उत्पन्न हो सकता है इस कारण सभी से सभी की उत्पत्ति हो पर ऐसा नहीं। अत: असत् नहीं होकर के कार्य सत् ही होता है। पुन: प्रश्न करते हैं और किस प्रकार से?

4. **शक्तस्य शक्यकरणात्**- अर्थात् समर्थ से कार्य की उत्पत्ति हो सकती है, न की असमर्थ से। जैसे शक्ति युक्त कारण समर्थ से संबंध होने से कार्य को उत्पन्न करने में समर्थ होता है, असम्बन्धित कारण उसके कार्य को नहीं कर सकता अत: समर्थ कारण की असत् से उत्पत्ति नहीं होती है। वस्तुत: कारण में उसकी आत्मा के रूप में वर्तमान कार्य की अव्यकृतावस्था तथा अनागतावस्था ही कार्य की नियामक शक्ति होती है, जो भावी कार्य को करने में समर्थ होती है, इसलिए वह कार्य शक्ति अनागतावस्थात्व रूप में कारण में होने के कारण भाव कार्य की सत्वावस्था ही होती है, अत: असत्व तत्व होता ही नहीं है। पुन: प्रश्न करते हैं और किस प्रकार से?

ध्यान दें:

5. **कारणभावात्**- अर्थात् कार्य का कारणत्व भाव होने से। कारण से भिन्न कार्य नहीं हो सकता है। क्योंकि कारण सत्व धर्म वाला होता है तो उससे भिन्न कार्य असत्व धर्म वाला कैसे होगा। इसलिए कार्य सत् ही होता है।

## 4.5.1 ) असत्करणात्

उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य की सत्ता के प्रथम हेतु के लिए असत्करण कहा गया है। असत्करण से तात्पर्य है कि अभावात्मक कारण में किसी प्रकार से भी करने का सामर्थ्य नहीं होना। सांख्यों के शास्त्र में कारक व्यापार के पूर्व कार्य असत् अभावात्मक होने से वह किसी भी प्रकार से उसके कार्य की उत्पत्ति नहीं कर सकता है। कारण के मध्य में सूक्ष्म रूप से विद्यमान अव्यक्त कार्य ही कारक व्यापार को व्यक्त रूप से प्रकाशन करनें मे समर्थ होता है। इसलिए सांख्यतत्व कौमुदी में वाचस्पति मिश्र ने कहा है - "असच्चेत् कारणव्यापारात् पूर्व कार्य नास्य सत्त्वं कर्तुं केनापि शक्यं, न हि नीलं शिल्पिसहस्रेणापि पीतं कर्तुं शक्यते"।

(असत् कारण व्यापार से पूर्व किसी के द्वारा भी इसे सत् नहीं किया जा सकता है जैसे हजार शिल्पी भी नीले को पीला नहीं कर सकते हैं।)

निश्चित रूप से "घट सत्व धर्म रूप वाला है, असत्व धर्म वाला होता है" इस प्रकार का व्यवहार हम लोगों के द्वारा किया जाता है। पकाने से पहले जैसे "घड़ा काला है" इस प्रकार घट में श्यामता, पकाने के बाद "घड़ा लाल है" इस प्रकार घट में रक्तता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार उत्पत्ति से पहले घट में असत्वधर्म होता है तथा उत्पत्ति के बाद घट में सत्व धर्म होता है। इस प्रकार से सत् तथा असत्व में भी दोनों को अङ्गीकृत कर सकते है। तब कहते हैं ऐसा नहीं है। सद् तथा असत् दोनों ही धर्म है इन दोनों को धर्मी के रूप में अलग नहीं कर सकते। जैसे धर्मी में सत्व के बिना धर्मसत्व अनुपपन्न होता है, उसकी उत्पत्ति से पहले भी कार्य सत्व रूप में स्थित रहता है यह अङ्गीकार करना चाहिए। इसका अर्थ ये है कि यदि सत्व तथा असत्व को स्वीकार करते हैं। तो असत्व के समय वह नहीं है इस प्रकार से कहा जायेगा। तब किसका धर्म असत्व है यह कहना चाहिए, अविद्यमान धर्मी में उसका ध र्म विद्यमान नहीं है ऐसा कहीं-कहीं कहा जाता है। सत्व की अवधारणा करने पर सत्वधर्म स्वयं ही सिद्ध होता है, तथा सत्व कार्य की ही पहले उत्पत्ति सिद्ध होती है। इसलिए कार्य सत्व ही है।

धर्मी का सम्बन्ध विद्यमान धर्म के तदाश्रयत्व होने से साथ में चलता है, इस प्रकार से नियम करने पर उत्पत्ति से पहले ' घट असत् ' था इस प्रकार का अभिधान सङ्गत नहीं होता है। घट असत् है इसका तो यह अर्थ हुआ कि असत्वरूप घट का आश्रय भी घट ही है। उत्पत्ति से पूर्व धर्मी के साथ सम्बन्ध मानने से असत्व रूप धर्म का धर्माश्रय कैसे भी सङ्गत नहीं होता है। जैसे 'नीलं कमलम् ' इसमें नील रूप धर्म का आश्रय कमल ही है इस प्रकार का अर्थ जाना जाता है। इसी प्रकार 'घट असत् है' इसका भी 'असत्वरूप धर्माश्रय घट है इस प्रकार का अर्थ जानना चाहिए। परन्तु ये भी युक्ति संगत नहीं है कमल के साथ नील का इस तरह असत् के साथ घट का सम्बन्ध असम्बन्धत्वात् नहीं होता है। इसलिए धर्मी के सम्बन्ध से विद्यमान धर्म का ही सम्बन्ध तदाश्रयत्वनियम से असम्बन्ध असत्व धर्म का कारण तदाश्रयत्व सम्भव है।

निश्चित रूप से कुलेलादि व्यापार से कार्य पहले (कारण रूप में) भी सद् ही होता है ऐसा मानना चाहिए। यदि कुलेलादि व्यापार को अर्थवान् मानें तो अन्य कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता है। घटादि स्वरूपों की सिद्धि के लिए कारक व्यापार को नहीं मानना चाहिए क्योंकि वे तो पहले ही सिद्ध हो चुके हैं। करण ही उत्पत्ति के अनुकूल व्यापार है, उससे सत् किसी समय में सम्भव नहीं होता है। तथा न विद्यामान्

ध्यान दें:



की उत्पत्ति किसी के द्वारा कुछ देखी गयी है। उसी प्रकार जैसे पूर्व में सिद्ध होने से मिट्टी पिण्डादि के कारण के स्वरूप सिद्धि के लिए कुछ भी अभीप्सित नहीं है। वैसे ही पहले सिद्ध होने से कार्यस्वरूप भी उसकी प्रसिद्धि के लिए अभीप्सित नहीं है। वैसे संसार में देखा जाता है कि कार्यस्वरूप की सिद्धि के लिए लोक इच्छा करता है। इसलिए उत्पत्ति से पहले भी कार्य का अभाव है जिससे कारक व्यापार अर्थवान् होता है इस प्रकार से कहने पर वाचस्पति मिश्र कहते है - ''कारणाच्च सतोऽभिव्यक्तिरेवावशिष्यते'' इति। इसका अर्थ है कारण व्यापार से पूर्व भी व्यवहार योग्य सूक्ष्म रूप से सिद्ध होता है उसकी सत् कार्य की जो व्यवहार योग्य स्थूल रूप उपादान अभिव्यक्ति होती है वह फिर कारण तथा कुलेलादि व्यापार से होती है। इस प्रकार से यह अभिव्यक्ति ही साध्यतया के रूप में अवशिष्ट रहती है, न की उत्पत्ति के लिए। इसलिए कहा गया है जिस वस्तु की अभिव्यक्ति होगी वह उसकी अनागतावस्था होती है, जिसकी अभिव्यक्ति पहले थी वह उसकी अतीतावस्था होती है। जो वस्तु स्वव्यापाररूढ अभिव्यक्ति से आपन्न होती हुई होती है, वह उसकी वर्तमान अवस्था की स्थिति होती है। वहाँ पर उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य विद्यामान हो और अविद्यामान इस कारण से दण्डचक्रादि की नूतनता के द्वारा क्या सिद्ध किया जाता है, इस प्रकार से नैयायिक आक्षेप करते हैं।

तब सांख्यदर्शनवादी इस प्रकार से समाधान करते हैं, दण्डादि जो कारण होते हैं वे किसी भी काल में अपूर्व असद् घटादि कार्य को उत्पन्न नहीं करते हैं। किन्तु अव्यक्तावस्था से कारण में विद्यामान घटादिकार्य को वर्तमान अवस्था में लाते हैं। कारण व्यापार कारण ही पृथुबुध्नोदरादि कार्य कारणों की व्यवस्था करते हैं।

निश्चित रूप से वर्तमान स्थित मिट्टी के पिण्ड से घड़े का निर्माण होता है फिर घट में उत्पन्न अतीत अवस्था की सहायता से मिट्टी के पिण्डादियों से फिर घट की उत्पत्ति क्यों नहीं होती है? सांख्यों के मत में तो घट का वर्तमान काल भी अतीतावस्था वाली मिट्टी के पिण्ड का वर्तमान काल में भी विद्यमानत्व है। तब कहते हैं- वर्तमान अवस्था को प्राप्त करके जो कारण होता है वह ही कार्य की व्यक्तावस्था को सम्पादन करने में समर्थ होता है न की अतीत अवस्था अतीतावस्थित कारण से कार्य का आविर्भाव होता है। यदि कार्य उत्पत्ति के पहले भी अत्यन्त असत् हो तो कारण व्यापार से उत्पन्न नहीं होता है। जैसे अत्यन्त असत् होने के कारण खरगोश में सींग आदि कारण व्यापार से कुछ उत्पन्न करनें में समर्थ होते हैं। सत् होने पर तो कारण व्यापार का कोई प्रयोजन ही नहीं है उसकी पूर्व में विद्यमानता के कारण। इसलिए पूर्व में उत्पन्न कारण की आत्म सत् होते हुए भी कार्य की आत्मा से असत् होता है। इस प्रकार से समझना चाहिए। इससे असत् वाद उत्पन्न नहीं होता है अपितु कारण व्यापार ही सप्रयोजन युक्त कहलाते हैं। इस प्रकार से लोक में ऐसे कारण व्यापार हैं ही नहीं जो किसी भी रूप से उत्पत्ति से पूर्व नहीं थे। जैसे रेत में तेल। यहाँ पर ना तो कार्य को समझना चाहिए और ना ही असत् वाद को मानना चाहिए। अत: वह पूर्व में उत्पत्ति से कार्य रूप से असद् होता हुआ भी कारण रूप से सत् ही समझा जाता है। उसकी कारण व्यापार से उत्पत्ति मानने पर कोई विरोध नहीं है। अपने सामर्थ्य के अभाव से कारण व्यापार कुछ भी अपूर्व नहीं कर सकता। नहीं तो रेत से भी तेल निकालता। परन्तु उसके द्वारा इस प्रकार के कार्य नहीं देखे जाते हैं। तो फिर उसके द्वारा क्या किया जाता है? कारण रूप से सत् होते हुआ कार्य जिसके द्वारा कार्य रूप में सत् हो जाए वही उसका कार्य है।

कार्य की अभिव्यक्ति असत् कारण व्यापार से हो तो ऐसा भी नहीं है, क्योंकि पूर्व में सत् वस्तुओं की ही अभिव्यक्ति होती है न की असत् की। जैसे पीड़न करने पर तिल से तेल निकलता है धान से चावल, दोहन से गायों से दुग्ध उत्पन्न होता है। इस प्रकार तिल आदि में पहले से विद्यमान तेल आदि ही पीडनादि के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं इस प्रकार से यह सत्व की ही अभिव्यक्ति है न की असत् की। परन्तु असत् की अभिव्यक्ति का तो कोई दृष्टान्त ही नहीं है। इसलिए सांख्य सूत्र में कहा गया है।

ध्यान दें:

"नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्" (1.114) इति। जैसे असत् नर विषाण (मुनष्य में सींग) की उत्पत्ति कैसे भी नहीं हो सकती वैसे असत् कार्य की किसी भी प्रकार से कारक व्यापार से उत्पत्ति करना गलत ही है इस प्रकार से तार्किकाभिमत रूप से असत् कार्यवाद होता है। अत: "असदकरणात" इस प्रथम हेतु की व्यख्या की जाती है।

## 4.5.2 ) उपादानग्रहणात्

कारण व्यापार से पहले कार्य के सत्व में द्वितीय हेतु "उपादान ग्रहणात्" है। उपादान कारणों के ग्रहण से कार्य के साथ सम्बन्ध उपादान ग्रहण कहलाता है। उससे उपादान कारणों के द्वारा कार्य के सम्बन्ध से भी कार्य की उत्पत्ति के पूर्व सत् ही होता है। कार्य के सम्बन्ध होने से कारण ही कार्य का जनक होता है। सम्बन्ध ही द्विनिष्ठ होता है। कार्य असत् होता तो एकसम्बन्धि कार्य के असत् होने से उसके साथ कारण का सम्बन्ध उचित नहीं है। उससे असम्बद्ध कार्य के उत्पादन के कारण का सामर्थ्य उपयुक्त नहीं होता है। इसलिए उत्पत्ति से पहले कार्य के सतत्व को ही अङ्गीकृत करना चाहिए। अत: एक सांख्यसूत्र कहा गया है ''उपादाननियमात्" (1.115) इति।

जिस कार्य का निश्चत रूप से जो कारण होता है जैसै मिट्टी का घट,तन्तओं का पट, वह सत् ही उस (कार्य) रूप में उपलब्ध होता है न की असत् में। यदि कार्य उत्पत्ति से पहले कारण से अलग नहीं होता है तो उसमे वह सत् ही उपलब्ध होता है। जैसै मृत्तिका से अलग पट का सत्व मृत्तिका में उपलब्ध नहीं होता है, उसी प्रकार तन्तुओं से अलग घट का सत्व तन्तुओं में नहीं मिलता है। निश्चित रूप से मृत्तिका से घट अलग है तथा तन्तुओं से पट अलग है। तथा मृत्तिका ही घट है तथा तन्तु ही पट है तो ऐसा भी नहीं है तो जैसे मिट्टी से घट अलग है वैसे ही मिट्टी से पट भी अलग ही है। ऐसे ही तन्तुओं से जैसे पट अलग है वैसे ही तन्तुओं से घट भी अलग ही है। फिर भी कोई विशेष जिसके द्वारा घट की उत्पत्ति में मृत्तिका ही उपादान होती है न तन्तु, तथा पट की उत्पत्ति में तन्तु ही उपादान कारण है न की मिट्टी। इसलिए सभी जगह मिट्टी में घट तथा तन्तुओं में पट उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है। जिस भाव से अथवा जिस नियम से यह उपलब्ध होता है उससे उसकी उत्पत्ति से पहले सिद्ध होता हैं। अन्वय तथा व्यतिरेक के उपलब्धि पथ पर आरूढ होते हुए कार्य तथा कारण के भाव रूप में होते है। मिट्टी तथा घट में और तन्तु तथा पट में जिस प्रकार से अन्वय तथा व्यतिरेक दिखाई देता है, उस प्रकार से मिट्टी तथा पट का एव तन्तु तथा घट प्राप्त होता है। क्या कारण है की उत्पत्ति से पहले मिट्टी तथा घट में अनन्यत्व है और तन्तु तथा पट में भी अनन्यत्व है। यहाँ पर यह न तो विपरीत है और न अलग है इस प्रकार से यहाँ पर कोई संशयावकाश भी नहीं हैं।

इस प्रकार से संसार में भी दही आदि का उपादान दूध ही दिखाई देता है, घट आदि का मिट्टी। कार्य से उत्पत्ति से पहले कारण से अलग हो ही नहीं सकता है तब उस उस कार्यार्थी का उस-उस के उपादान का नियम यह नहीं दिखाई देता है। किन्तु उससे विपरीत ही अनुभव होता है। इस प्रकार दही आदि की उपादान मिट्टी तथा घटादि का उपादान दूध। यहाँ पर क्या कारण हो सकता है। यहाँ पर यह ही कारण है कि न तो उत्पत्ति से पहले मिट्टी से अनन्य दही दिखता है न दूध से अनन्य घट दिखाई देता है। जिसका उत्पत्ति से पहले ही कार्य असत् हो उसका सर्वत्र असत्व भाव होने के कारण दूध ही दही का उपादान होता है न की मृत्तिका तथा मिट्टी ही घट का उपदान होता है न की दूध। यदि कहा जाए की असत्व विशेष भी उन कारणों उस कार्य का उत्पादक है तो यहाँ पर कोई अतिशय हेतु होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं है प्रकारान्तर से असत्वाद का परित्याग करके सत्वाद का ही ग्रहण करना होता है। कार्य के कारण में अनन्यत्व से अवस्थान का अतिशय पदार्थ होता है। इस प्रकार यह असत्कार्यवाद में जरूरी होता है।

ध्यान दें:



## 4.5.3 ) सर्वसम्भवाभावात्

उपादानग्रहणाद् इस द्वितीय हेतु में प्रतिपादित किया गया की कार्य के साथ सम्बन्ध होने से कारण ही कार्य का जनक होता है। न की असम्बद्ध सम्बन्ध के द्विनिष्ठ नियम से। वहाँ यदि इस प्रकार का आक्षेप किया जाए कि असम्बद्ध ही कार्य और कारण से उत्पन्न हो। अर्थात् असत् ही कार्य को उत्पन्न करे इस आक्षेप के निराकरण के लिए एक अनन्तर हेतु बताया गया है जो है 'सर्वसम्भवाभावत् ' इस प्रकार से। यदि असम्बद्ध कारण से असम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति स्वीकार करते है तब जिस किसी कारण से जिस किसी भी कार्य कि उत्पत्ति हो जाए, सभी से ही सभी कार्यों की उत्पत्ति हो जाए। तन्तुओं से घट की मिट्टी से पट की। परन्तु यह तो सम्भव नहीं है। अत: जिस कारण से जिस कार्य का सम्बन्ध है उस कारण से ही उस कार्य की उत्पत्ति होती है,यह अङ्गीकार करना चाहिए । तथा स्वीकार करने पर पूर्वोक्त युक्ति से असत सम्बन्ध का अनुचित होने से सत् कार्य को ही स्वीकार करना चाहिए। इसलिए सांख्याचार्यों ने कहा है।

**असत्त्वे नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसङ्गिभिः।**
**असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः॥** इति।

श्लोकार्थ:- असत्व में कार्य की उत्पत्ति पहले ही अविद्यमान होने के कारण (उन कार्यों का) सत्वसङ्ग तथा सत्वधर्माश्रय कारणों के साथ सम्बन्ध सद् तथा असद् के सम्बन्ध अनुपात से नहीं है तथा नहीं होना चाहिए। कारणों के द्वारा असम्बद्ध कार्य के इच्छित मत में यह व्यवस्थिति होती है की "मिट्टी ही घट है तथा कनक से ही कटक होता है" "दूध से ही दही उत्पन्न होता है" इस प्रकार की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए, अपितु "सभी से सभी की उत्पत्ति" इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए इसका यह अर्थ होना चाहिए। इसलिए सांख्य सूत्र में कहा गया है, "सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात्" (1. 116)

### पाठगत प्रश्ना 4.2

1. सत्कार्यवाद का प्रतिपादन करने वाली सांख्यकारिका कौन-सी है?
2. सत्कार्यवाद को मानने पर कितने कारण कारिकाकार बताएँ हैं?

   (क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) षट्
3. शक्ति के शक्यकरण में यहां पर कौन-सी शक्ति है?
4. "नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्" इस सांख्य सूत्र से किसका बोध होता है?
5. "उपादानग्रहणात्" यहाँ पर उपादान ग्रहण से क्या तात्पर्य है?
6. "असत्त्वे नास्ति सम्बन्धः" ..... इस श्लोक पूरा कीजीए।

## 4.5.4 ) शक्तस्य शक्यकरणात्

कारण सम्बद्ध ही कार्य सम्बन्ध के रूप में कारण के द्वारा उत्पन्न होता है। न की असम्बद्ध असम्बद्ध से। यहाँ पर अन्यथा है अथवा अनवस्था है इस प्रकार से नहीं सहने वाले तार्किक लोग शङ्का करते हैं- कार्य के असम्बद्ध होने पर भी सत् कारण वही कार्य करता है जिस कार्य में जो कारण शक्ति होती है वह उस कारण को तथा उस कार्य को जन्म देती है, न की सभी को। उससे "मिट्टी से ही

ध्यान दें:

घड़ा बनता है" कनक से ही कटक है। यह व्यवस्था असत् कार्यवाद में भी संघटित होती है। मिट्टी आदि का घटादि के उत्पादन में शक्तित्व होने से। उससे कार्य कारण के सम्बन्ध में कल्पना का कुछ प्रयोजन नहीं है। कार्य उत्पन्न करने वाली शक्ति ही कारण कहलाती है, इस कारण से शक्ति ही कार्य निष्ठा होती है। उसे कैसे समझा जाए? तब कहते हैं कार्य दर्शनात् कार्य के दर्शन से "मिट्टी से ही घड़ा बनता है तथा कनक से कटक बनता है" इस प्रतिनियत कार्योत्पत्ति के अन्यथा अनुपपत्ति ज्ञान से। जैसे अनुमान करते हैं "अग्नि में जलाने के अनुकूल शक्ति रहती है" दाह रूप कार्य को जन्म देनें के कारण, जो उसमें नहीं वह नहीं है। वहाँ कार्य नियामक कोई अतिशय विशेष होता है, वह सामर्थ्य विशेष ही शक्ति कहलाता है। उस के द्वारा शक्तिमान का ही कारण का कार्यजनकत्व समझने से सभी से सभी की उत्पत्ति वाली अव्यवस्था साथ में नहीं चलती है। इसलिए तो कहा गया है सत्कार्यवाद को समझने का चतुर्थ हेतु शक्तस्यशक्यकरणात् है।

कार्य जनन शक्ति के मत में कारण में विद्यमान वह शक्ति क्या सभी कार्यों के विषय में है (अर्थात् सभी कार्यों के उत्पादन में समर्थ है) क्या वह शक्यकार्यविषय है (जो जिस कार्य को उत्पन्न करने में सक्षम है उस कार्य की विषय है)। यदि सर्वकार्य विषय इस प्रथम पक्ष को स्वीकार करते है तो " सभी सबसे उत्पन्न हो जाएँ" इस प्रकार की अव्यवस्था हो जाएगी। उसके द्वारा ही कनक में सर्व कार्य विषय शक्ति है आ जाए, तो फिर उससे घटादि की भी उत्पत्ति होनी चाहिए " मिट्टी से घट तथा कनक से कटक" तो फिर इस व्यवस्था की तो अनुपत्ति हो जाए। शक्यकार्यविषय शक्ति यदि यह द्वितीय पक्ष स्वीकार करते है तो अविद्यमान शक्यकार्य में उस विषय की शक्ति है ऐसा कैसे भी नहीं कह सकते, इस प्रकार से यहाँ दोष उत्पन्न होगा। यहाँ पर कहते हैं की यदि उस शक्ति शक्य कार्य विषय इस प्रकार से स्वीकार करते है तो तब कारण व्यापार से पहले होना चाहिए तब तो कारण में वह शक्य कार्य विषय शक्ति है ही नहीं। अर्थात् विद्यमान कारण में अविद्यमान शक्यकार्यविषय शक्ति यदि कुछ रहने के योग्य है तो वह विषय विषयी भाव सम्बन्ध से ही सम्भव है। कारण के विद्यमानत्व से तथा शक्यकार्य के अविद्यमानत्व से उन दोनो में कैसे भी विषयविषयी भाव घटित नहीं होता है।

निश्चत प्रकार से 'वह शक्ति सर्वत्र है' ऐसा स्वीकार किया जाता है परन्तु सभी से सभी कार्यों की उत्पत्ति नहीं होती है। वह तो कार्य में होने वाली अलग ही शक्ति विशेष होती है। जिस शक्ति भेद से कारण कुछ ही कार्य को जन्म दे सकता है न की सभी को जैसे "मिट्टी से घट् तथा तन्तु से पट "। इस प्रकार की व्यवस्था यदि असत् कार्यवाद में भी घटित होती है तो वहाँ पर भी कोई दोष नहीं होता है, तो ऐसा नहीं है। कारण निष्ठ वह शक्ति भेद कार्य से सम्बद्ध होता है, तो फिर यह सम्भव नहीं होता की अविद्यमान कारण से साथ विद्यमान कारण निष्ठ शक्ति विशेष सम्बन्ध है यह नहीं कहा जा सकता। न ही विद्यमान कारण निष्ठ शक्ति भेद सम्बन्ध अविद्यामान कारण के साथ कहा जा सकता है। यहां पर सत् तथा असत् की अनुपत्ति होती है। यदि उस शक्ति भेद को कार्य से असम्बद्ध मान भी लिया जाए तो उससे ''सर्व सर्वस्मात् सम्भवेत्" यह पहले कही गयी अव्यवस्था हो जाएगी अत: कारण में कार्योत्पादिका शक्ति होती है और वह शक्ति किसी सत् कार्य से सम्बद्ध है ऐसा अङ्गीकार करना चाहिए। इसलिए कहा गया है 'शक्तस्य शक्यकरणात्'। कारण में तदात्मना वर्तमान कार्य की अनभिव्यक्त अवस्थारूप अनागतावस्था ही कार्यनियामक शक्ति है। उसके द्वारा सम्बन्ध कार्य ही होने में समर्थ है। अनागत अवस्थात्व कारण में कार्य के सत्व होने से कार्य असत् नहीं हो सकता। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य ने कहा है "शक्तिश्च कारणस्य कार्यनियमार्था कल्प्यमाना नान्या, असती वा कार्यं नियच्छेत्, असत्त्वाविशेषात् अन्यत्त्वाविशेषाच्च। तस्मात् कारणस्यात्मभूता शक्ति:, शक्तेश्चात्मभूतं कार्यम्" इति।

ध्यान दें:



## 4.5.5 ) कारणभावात्

सत्कार्यवाद को समझने में पाँचवा हेतु है कारणभाव। कार्य तथा कारण में तादात्म्य होने पर भी इस हेतु से सत्कार्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। कारणभावात् इसका अर्थ है कार्य का कारणात्मकत्व भाव। क्योंकि कारण से भिन्न कार्य नहीं है इसलिए कारण के सत् होने से उससे भिन्न कार्य कैसे भी असत् नहीं हो सकता है। इसलिए अनुमान किया जाता है कि कारण से अभिन्न होने के कारण तथा कारण स्वरूपवत् होने के कारण घट हमेशा सत् ही होता है। कार्य तथा कारण के भेद साधन में बहुत सारे प्रमाण हैं "तन्तु पट से अलग नहीं हो सकते तद्धर्मत्वात्। जो जिससे अलग हो जाता है वह उसका धर्म नहीं होता है जैसे गौर वर्ण अश्व से तथा पट तन्तुओं से। इस प्रकार यहाँ पर अर्थान्तर नहीं है। तद वस्तु विशेष होने के कारण पट ही तन्तओं का धर्म होता है। इसलिए पट तथा तन्तुओं में अभेद रहता है। कुछ तन्तु तथा पट में भेद उपादान तथा उपादेय भाव से भी सिद्ध होता है। जिससे कार्य उत्पन्न होते हैं, अथवा कार्यों को जन्म मिलता है वह उपादान कहलाता है। कार्य की अनागत अवस्था का आश्रयी भूत कारण होता है। उपादेय व्यवहार्थियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य कार्य होना चाहिए। जिन दोनों का उपादान तथा उपादेय भाव होता है उन दोनों में ही तादात्म्य सिद्ध होता है। तन्तु और पट का उपादान तथा उपादेय भाव लोक में ही सिद्ध होता है। इसलिए संसार में तन्तु उपादायों से ही पट का निर्माण लोगों के द्वारा किया जाता है। जिन दोनों में अर्थान्तरत्व भाव हो उन दोनों का उपादान तथा उपादेय भाव सिद्ध नहीं होता है। जैसै घट तथा पट का। तन्तु तथा पट में अर्थान्तरत्व नहीं है क्योंकि उन दोनों का उपादान तथा उपादेय निरन्तर साथ में ही चलता है। उससे उन दोनों का तादात्म्य सिद्ध होता है और संयोग अभाव से तथा अप्राप्ति के अभाव से तन्तु और पट का अर्थान्तरत्व भी सिद्ध नहीं होता है। वहाँ पर अप्राप्त तथा प्राप्त का संयोग होता है तथा अप्राप्ति का विभाग होता है। और संयोग के अनाश्रित्व से तथा विभाग के अनाश्रितत्व से वस्तुओं का अभेद सिद्ध होता है। तब अनुमान करते हैं- तद् विभाग अनाश्रितत्व के कारण पट तन्तुओं से अलग नहीं हो सकता। क्योंकि जो अलग होता है वहाँ विभाग देखे जाते हैं हिमाचल तथा विन्ध्याचल का। इस प्रकार से कार्य कारण में अभेद सिद्ध होने पर कारक व्यापार से उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य का सत्व सिद्ध होता है। निश्चित रूप से तन्तु पट की एकता समझना चाहिए। तब 'ये तन्तु है और यह पट है' इस प्रकार की संज्ञा भेद की अनुपपत्ति होने पर कहते हैं की अवयव विन्यास विशेष संस्थान भेद से युक्त ही संज्ञा भेद होता है इसमें कुछ असमञ्जस नहीं है।

निश्चित रूप से उत्पत्ति के विनाश से बुद्धि भेद से व्यपदेश भेद से अर्थ क्रिया भेद से व्यवस्था भेद से वस्तुओं का भेद सिद्ध होता है, इस प्रकार यहाँ पर कार्य कारण में अभेद सिद्धि नहीं कर सकते। उससे उत्पत्ति के पहले असत् ही कार्य के रूप में सिद्ध होता है। इसलिए कहा गया है- " पट तन्तुओं से अलग हो सकता है, उसके नष्ट होने से अथवा प्रतीयमान होने से" इस प्रकार उत्पत्ति बुद्धि से तथा विनाश बुद्धि से तन्तु तथा पट में भेद सिद्ध होता है। संसार में देखा भी गया है कि उत्पत्ति तथा विनाश भिन्न वस्तुओं में ही सम्भव होता है। न कि अभिन्न वस्तुओं में। इस प्रकार से बुद्धि भेद भी वस्तुओं में भेद सिद्ध करती है। इसलिए कहा गया है " ये तन्तु है तथा यह पट है " इस प्रकार का ज्ञानवैलक्ष्यण्य भी तन्तु और पट में भेद का साधक होता है। इस प्रकार से यहाँ पर व्यपदेश भेद होता है " तन्तुओं में वस्त्र है " इस प्रकार का आधार तथा आधेय भेद भी वस्तुओं में भेद साधक है। अर्थ क्रिया भेद जैसे धागों के द्वारा वस्त्र सिला जाता है तथा वस्त्र के द्वारा शरीर ढका जाता है। इस प्रकार का प्रयोजन उत्पादन भेद भी कार्य तथा कारण के भेद साधक है। इस प्रकार अर्थ क्रिया तथा व्यवस्था के भेद से विभिन्न प्रयोजन जनकत्व नियम भी भेद साधक होता है। जैसे घट के द्वारा जल ले जाया जाता है, लेकिन मिट्टी से नहीं, इस प्रकार अर्थक्रियाकारित्व से मिट्टी तथा घट में भेद सिद्ध होता है। कार्य तथ कारण मे यदि अभेद होता तो मिट्टी के पिण्ड से भी जल ले जाया जाए तथा घट से भी भित्ती सम्पादित की जाए,

ध्यान दें:

तब यहाँ पर इस प्रकार की अव्यवस्था उपलब्ध होती है। परन्तु वह उपलब्ध नहीं होती है इसलिए कार्य तथा कारण मे भेद अङ्गीकृत करना चाहिए। इस प्रकार से उत्पत्ति विनाश, बुद्धि तथा व्यपदेशार्थ क्रिया व्यवस्था के भेद हेतु तथा कार्य कारण इन दोनों में भेद साधती है। न की कार्य तथा कारण में तादात्म्य। इस प्रकार से ये हेतु वास्तविकरूप से कार्य तथा कारण में भेद साधने के योग्य नहीं हैं।

कहीं भी एक अभिन्न वस्तु में भी तत् तत् विशेष आविर्भाव तिरोभाव रूप औपाधिक भेद को लेकर इनका उत्पत्ति विनाशादि हेतुओं का अविरोध सिद्ध होता है। इसलिए किसी का विरोध नहीं है। इसलिए वाचस्पति मिश्र ने कहा है- "जैसे कछुए के अङ्ग कछुए के शरीर में प्रवेश करके छिप जाते हैं, अन्दर भी चले जाते हैं तथा उत्पन्न भी हो जाते है, वे अङ्ग कछुए से उत्पन्न नहीं होते हैं और न कछुए के द्वारा उनका नाश होता है। इस प्रकार एक मिट्टी तथा सुवर्ण से घट मुकुटादि विशेष उत्पन्न होते हैं तथा विनष्ट होते हैं। इस प्रकार से फिर असत् की उत्पत्ति तथा सत् का निरोध नहीं है। इसलिए भगवान् कृष्णद्वैपायन ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है।

**"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः"** इस प्रकार से।

असत् का नरविषादादि के जैसे अविद्यामान का सत्व भाव नहीं होता है। तथा सत् का विद्यमान अर्थ का अभाव असत्व भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार से श्लोक का अर्थ किया जा रहा है।

मिट्टी सुवर्णादि जब आविर्भावरूप में विकाशशाली होती है तब "घटादी उत्पन्न होते हैं" इस प्रकार से व्यवहार होता है तथा जब मिट्टी आदि कार्य के अतीतावस्थारूपसंकोचशाली भाव होता है तब "घटादि प्रध्वस्त" होते हैं इस प्रकार का व्यहार करना चाहिए। इस प्रकार से संस्था भेद से एक में भी उत्पत्ति तथा विनाश के उपपन्नत्व से घटादियों की उत्पत्ति तथा विनाश से मिट्टी आदि से भिन्नता की शङ्का नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार से बुद्धि भेद भी भेद साधक नहीं होता है। उसी प्रकार पट अनागतावस्थाओं में तन्तुओं में " ये तन्तु है " इस प्रकार से ज्ञात होते हैं। पट की भी वर्तमानावस्थाओं में " यह पट है" इस प्रकार से एक में भी विलक्षण बुद्धि उत्पन्न होती है। "तन्तुषु पटः" यहाँ पर आधार तथा आधेय रूप अलग रूप होने पर भी भेद के साधक नहीं हैं। जैसे "इस वन में तिलक (वृक्ष) रहते है" इस प्रकार का व्यवहार सिद्ध होता है वैसे ही "तन्तुओं में पट है" यह भी जानना चाहिए। तिलक से तात्पर्य है वृक्षों के समुदाय, इस प्रकार वृक्ष तथा वन का अभेद होने पर भी जैसे आधार और आधेय का व्यवहार होता है उसी प्रकार तन्तु तथा पट में भी अभेद होने से आधार तथा आधेय व्यवहार उत्पन्न होता है, इस प्रकार का व्यपदेश भेद भी भेदसाधक नहीं होता है। अर्थ क्रिया भेद भी भेद साधक नहीं होते हैं। अग्नि आदि में व्यभिचार के दर्शन से। जैसे एक ही आग दाहक पाचक तथा प्रकाशक होने के कारण से " जहाँ जहाँ विभिन्न कार्य कारित्व होगा वहाँ पर वस्तु भेद होगा तथा व्याप्ति फलित नहीं होगी। इस प्रकार अर्थ क्रिया तथा व्यवस्था भी वस्तु भेद में हेतु नहीं है। अतः जैसे प्रत्येक नौकर मार्ग दर्शन लक्षणों से अर्थ क्रिया को करते हैं न कि डोली का वहन, मिलकर ही डोली का वहन करते हैं। इसी प्रकार तन्तु भी प्रत्येक वस्त्र को बनाते हुए, वस्त्र रूप में आविर्भूत होकर शरीरादि को आच्छादित करते हैं। यह ही उत्पत्ति विनाश-बुद्धि व्यपदेश-अर्थ- क्रिया तथा व्यवस्था भेद होता है। इस प्रकार से उपरोक्त हेतु कार्य तथा कारण मे भेद सिद्ध नहीं कर सकते यह सिद्ध किया गया है। उनसे तो कार्य तथा कारण में तादात्म्य ही सिद्ध होता है। उत्पत्ति से पहले कार्य का सत्व धर्म था इस प्रकार से सत्कार्यवाद को समझने के लिए कारिकाकार द्वारा उल्लिखित पाँच हेतुओं का सविस्तार वर्णन पूरा हुआ।

## 4.6 ) शून्यवाद खण्डन

इस प्रकार से सत्कार्यवाद को सयुक्ति साधने पर बौद्धों के मत को असत् से सत् उत्पन्न होने से

ध्यान दें:



समीचीन नहीं मानते हैं। जिस प्रकार वन्ध्यापुत्र की उत्पत्ति दिखाई देती हैं तथा न वन्ध्यापुत्रा से किसी की उत्पत्ति सम्भव होती है। इसी प्रकार खरगोश के सींग भी दृष्टि पथ में अवतरित नहीं होते हैं। तथा बीज के नाश होने पर अङ्कुरोत्पत्ति के दर्शन से अभाव से ही भावोत्पत्ति दिखाई देती है परन्तु ऐसा नहीं है। अङ्कुरादि स्थल में भी बीजों के अवयवों में ही किसी निमित्त से क्रिया उत्पन्न होती है जिससे बीजों के अवयव पूर्व अवयव संस्थान को त्यागकर दूसरे संस्थान में चले जाते हैं। उस संस्थान अनन्त रस अङ्कुर उत्पन्न होते हैं जो बीज के अवयव कारण से उत्पन्न होते हैं यहाँ पर अभाव की सिद्धि नहीं होती है।

## 4.7 ) विवर्तवाद खण्डन

अद्वैत वेदान्ति जिस विवर्तवाद को मानते हैं तथा वह भी समीचीनता के योग्य नहीं है। क्योकि उनके मत में यथा मिथ्या जगत् शुक्ति में रजत की भ्रान्ति वत् तथा रस्सी में सर्प की भ्रान्तिवत् है, उनके मत में शुक्ति स्वरूप तथा रस्सी स्वरूप का स्वयं ही प्रकाश करती है। दृष्टान्त तो अच्छा है परन्तु यह असत्व के बाधित होने में प्रत्यक्ष सिद्ध जगत् के मिथ्यात्व कहने में असमर्थता से दृष्टान्त साथ नहीं चल रहा है। जहाँ बाध ज्ञान कोई अन्य कारण हो सकता है वहाँ ही मिथ्यात्व कह सकते हैं परन्तु प्रत्यक्ष सिद्ध जगत् कभी भी बाधित नहीं होता है इस कारण से यह मिथ्यात्व के साथ नहीं चलता है, इसलिए कपिल सूत्र में कहा गया है "जगत्सत्यत्वम् अदुष्टकारणजन्यत्वाद् बाधकाभावात्" (6.52) इति। दुष्टकारण जन्यत्व से तात्पर्य है पीले सङ्ख का ज्ञान। बाधक अर्थात् 'यह रजत नहीं है ' इस प्रकार का ज्ञान। जगत् भी दुष्टकारणजन्यत्व नहीं होता है प्रकृति आदि के अदुष्टत्वात्। 'यह जगत् नहीं है' इस प्रत्यय के अभाव के कारण यह बाधक नहीं है। इसलिए जगत का मिथ्यात्व उपयुक्त नहीं है। श्रुतियाँ भी जगत् का मिथ्यात्व सत्य रूप से प्रतिपादित करती हैं। "जो यह कुछ भी है वह उस सत्य को दिखाता है " और " जैसे विधाता ने पूर्व में सूर्य चन्द्र तथा इस जगत् की कल्पना की थी " वेदान्त सूत्रकार बादरायण भी "परिणामात्" इत्यादि सूत्रों के द्वारा प्रपञ्च को ब्रह्म का परिणाम मानते हैं न की विवर्त।

निश्चित रूप से "यहाँ पर नाना प्रकार का कुछ भी नहीं है " इत्यादि श्रुति के द्वारा जगत् के बाधित्व से अविद्या नाम का कोई दोष है ऐसा मानना चाहिए तो नहीं। "नेह नानास्ति किञ्चन" इस प्रकार की श्रुतियाँ जो अद्वैत प्रपञ्च बाधकता से अभिप्रेरित करती हैं वे वस्तुत: प्रकरणानुसार विभाग प्रतिषेध परक होती हैं। न की प्रपञ्च की अत्यन्त तुच्छ सम्पादिका होती हैं। 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इस प्रकार की श्रुतियाँ तो नित्यता रूप पारमार्थिक सत्ता विरह रूप अर्थ को प्रकाशित करती है, नहीं तो मृत्तिका दृष्टान्त की असिद्धि होती है। संसार मृत्तिका आदि के विकारों का अत्यन्ततुच्छत्व सिद्ध नहीं करता है जिससे ये दृष्टान्त सिद्ध हो जाए। इस प्रकार से विवर्तवाद सही नहीं है अपितु सत्कार्यवाद ही सही है।

### पाठगत प्रश्न 4.3

1. सत्कार्यवाद के अभ्युपगम में चतुर्थ हेतु क्या है!
2. "कारणाभावत्" इसका क्या अर्थ है?
3. "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:" यह वाक्य कहां से उद्घृत है?
4. सत्कार्यवाद के अभ्युपगम में पांचवा हेतु क्या है?
5. जगत् की सत्यताविषयक कपिल का सूत्र क्या है?

ध्यान दें:

6. पूर्व पक्षी के अनुसार वस्तु के भेदसाधक हेतु क्या है?

7. प्रथम पंक्ति के शब्दों से द्वितीय पंक्ति के शब्दों का मिलान करें-

| | | | |
|---|---|---|---|
| (1.) | असत: सत् जयते | (क) | नैयायिक |
| (2.) | सत: असत् जायते | (ख) | बौद्ध |
| (3.) | सत: सत् जायते | (ग) | अद्वैत वेदान्ती |
| (4.) | मिथ्यारूपेण प्रतीति जायते | (घ) | सांख्य |

## आपने क्या सीखा

- सत्कार्यवाद का विस्तृत परिचय,
- सत्यकार्यवाद की सिद्धि के लिए सांख्याचार्यों की उक्ति को जाना,
- सत्यकार्यवाद के संबंध में शून्यवाद को जाना,
- सत्यकार्यवाद से असद्कार्यवाद को जाना,
- सत्यकार्यवाद के संबंध में विवृतवाद को जाना,
- शून्यवाद के विषय के खंडन को जाना,
- विवर्तवाद के खण्डन को जाना

## पाठान्त प्रश्न

1. असत्कार्यवाद का संक्षेप में परिचय दीजिए।
2. शून्यवाद का संक्षेप में परिचय दीजिए।
3. विवर्तवाद का समास विधि से परिचय दीजिए।
4. सत्कार्यवाद का समास विधि से परिचय दीजिए।
5. सत्कार्यवाद को मानने के कौन-कौन से कारण हैं। उनमें दो का विस्तार पूर्वक आलोचन कीजिए।
6. सत्कार्यवाद को मानने में कारणभावात् हेतु को विस्तार से प्रतिपादित कीजिए ।
7. सत्कार्यवाद की दिशा में शून्यवाद का खण्डन समास विधि से लिखिए।
8. विवर्तवाद शास्त्र सम्मत क्यों नहीं है। इसमे सांख्यदर्शन की दिशा का विचार कीजिए ।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर 4.1

1. (ग) नैयायिकों का
2. (ख) सांख्यों का

ध्यान दें:



3. (घ) अद्वैतवेदान्तियों का

4. (क) बौद्धों का

5. (ग) विवर्त

6. सत्व से जो अलग प्रकार का होता है वहा विकार कहलाता है

7. पूर्वरूप का परित्याग करने से जो नाना प्रकार के असत्यकारणों का प्रतिभास होता है वह विवर्त है। जैसे सीपी में चाँदी का तथा रस्सी में सर्प का।

8. अव्यक्तरूप से।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर 4.2

1. असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। इति।

2. (ग) पाँच

3. कारण में तदात्मना वर्तमान कार्य की अव्याकृत अवस्था रूप अनागतगावस्था ही कार्य की नियामक शक्ति है।

4. मनुष्यों में सींग की तरह असत् है, अर्थात मनुष्यों में सींग की उत्पत्ति नहीं होती है, इस प्रकार से जानना चाहिए।

5. उपादान कारणों का ग्रहण का कार्य के साथ सम्बन्ध उपादान ग्रहण कहलाता है।

6. असत्त्वे नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसङ्गिभिः। असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः।। इति।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर 4.3

1. "शक्तस्य शक्यकारणात्"।

2. कार्य के कारणात्मक होने से।

3. श्रीमद्भगवदगीता।

4. "जगत्सत्यत्वम् अदुष्टकारणजन्यत्वात् बाधकाभावात्।

5. उत्पत्ति, विनाश, बुद्धि भेद, व्यपदेश भेद, अर्थ क्रिया भेद तथा व्यवस्था भेद ये भेद साधक हेतु हैं।

6. 1. (ख) 2. (क) 3. (घ) 4. (ग)